साहित्य का सामाजिक सरोकार और संस्कृति का वैश्विक परिदृश्य : एक विवेचन

डॉ. सरिता जैन
प्राध्यापक हिन्दी
शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

रांश -

प्रस्तुत शोधपत्र में साहित्य समाज और संस्कृति के व्यापक सरोकार के अंतःसम्बंधों का अध्ययन किया या है। जिस प्रकार संस्कृति का तत्व व्यक्ति के समाज तक अंतर्निहित होता है उसी प्रकार साहित्य का तत्व संस्कृति समाज में अंतर्निष्ठ होता है। समग्रतः तात्विक दृष्टि से समाज ही वह केन्द्र बिन्दु है जो संस्कृति से प्रस्फुटित होकर माज के जरिये प्रकट होता है और व्यक्ति के व्यावहारिक आचरण को सही दिशा में क्रियान्वयन की शक्ति प्रदान करता । चिंतन की प्रणाली को प्रभावित करने से लेकर उस प्रणाली से निष्पन्न समाज में, सकारात्मक गुण पैदा करने तक नों स्तरों पर केन्द्र बिन्दु समाज होता है, इसलिए साहित्य को समाज से जोड़ना तथा संस्कृति के तात्विक स्वरुप ो व्यक्ति तक पहुंचाना ही मानव कल्याण का मूलभूत उत्सव सिद्ध होता है।

ख्य शब्द - सरोकार, संस्कृति, वैश्विक, साहित्य, महाकाव्य।

साहित्य एक जीवंत गतिशील प्रक्रिया है। साथ ही साथ साहित्यकर्म एवं सामाजिक सरोकार भी है। साहित्य ा सामाजिक सांस्कृतिक सिद्धांत एक विशिष्ट रचनात्मक सरोकर का अंग है। साहित्य मनुष्य जाति के ज्ञान, नुभव का लिपिबद्ध रूप है। साहित्य में वह शक्ति है जो मनुष्य को पतन से बचाती है। एक ओर साहित्य संस्कृति ा संवाहक है तो दूसरी ओर साहित्य राष्ट्र की धरोहर भी है। किसी भी देश की पहचान उसके साहित्य से होती । साहित्य की प्रमुख विशेषतायें हैं - स्मरणीयता, प्रगतिशीलता, स्वतंत्रता, समाजकल्याण, मानवता और सहिष्णुता साहित्य निरंतर अपने और मनुष्य के विकास के रास्ते को खोजते रहा है। साहित्य जहां ब्रम्हानंद सहोदर है वहीं ह सत्यम् शिवम् सुन्दरम् भी है। साहित्य का तत्व कल्पना एवं भाव रहा है किन्तु अब वह नितांत यथार्थवादी गया है। साहित्य ने अपने लिये सामग्री सदा ही जीवन से ली है और वह निरंतर मनुष्य एवं जीवन को बनाये ब्रने के लिये संघर्षरत है। साहित्य ने मनोविज्ञान के साथ मिलकर मन की अंधी गलियों, गहरी गलियों में भटककर नुष्य के विकास की खोज की है। उसी प्रकार आज के वैश्वीकरण में भी वह सारी चुनौतियों को स्वीकार कर पनी यात्रा पर निरंतर अग्रसर है।

साहित्य की विकासशील परंपरा और नवीन प्रयोगों की द्वंदात्मक प्रगति के स्वीकार और बोध से ही साहित्य ा ज्ञान होता है। साहित्य एक सौन्दर्य बोधी वस्तु मात्र नहीं है, बल्कि एक सांस्कृतिक घटनाक्रम भी है, जो एक

ISSN 2395-01

मौलिकता लिये हुए साहित्यकार के द्वारा पाठकगण के सम्मुख प्रस्तुत की जाती है। साहित्य के कलात्मक मूल्यों
विश्लेषण और आलोचनाओं का समावेश ही साहित्य का सशक्त प्रस्तुतिकरण है। वस्तुतः साहित्य, साहित्यकारों
समाज को दिखाया गया आईना है, जिसमें सामाजिक गतिविधियों की झलक दिखाई पड़ती है। साहित्य में
दृष्टिपरक एवं दूरगामी खोजों के द्वारा समाज को उसका वास्तविक रूप दिखाया जाता है। समाज के उतार-च
समाज की कष्टप्रद घटनाओं एवं उनका विवरण ही साहित्य का सशक्त विन्दु होता है और उसी विन्दु के इर्द-
साहित्यकार साहित्य की रचना करता है। उदाहरण स्वरूप तुलसीदास द्वारा रचित महाकाव्य रामचरित मानस सा
का ही एक अंग है, जिसने आज भी समाज को सटीक तौर पर गतिशील एवं अनुशासित बनाए रखा है। ऐसे अ
साहित्यकारों ने अपने साहित्यिक रचनाओं के द्वारा समाज को सुदृढ़ता प्रदान की है। भारतीय समाज प्रत्येक भार
साहित्यकारों एवं उनके द्वारा रचित साहित्य का ऋणी है, जिनके द्वारा उन्हें मार्गदर्शन मिलते रहता है।

साहित्य संसार की स्वतंत्रता, कृति की स्वायत्तता एवं सौन्दर्य बोधी मूल्यों की समाज निरपेक्षता, सा
संबंधी चिंतन की देन है। मानव चेतना एवं विषयवस्तु के बीच अपनी मध्यस्थता के कर्तव्य का साहित्यकार को
होता है। साहित्य की स्वायत्तता साहित्यकार को उसके सामाजिक कर्त्तव्य का बोध कराता है। मानवीय सृजनशीलता
अभिव्यक्ति उसके विकासक्रम में साहित्यकार की सापेक्ष स्वतंत्रता के कारण साहित्य के स्वरूप में भी अंतर होता

साहित्य की स्वायत्तता में एक ओर परिवर्तन और निरंतरता का संबंध है तो दूसरी ओर नवीन प्रयोगों
विशिष्टता और परंपरा का भी संबंध है। साहित्य में एक महत्वपूर्ण समस्या अभिनव प्रयोगों की विशिष्टता है
दूसरी समस्या विकास के बावजूद निरंतर गतिशील परंपरा के अंतर्गत घटित होने वाले परिवर्तनों का स्वरूप है। साहि
की स्वायत्तता का सिद्धांत साहित्यिक प्रगति और प्रयोगों के बीच विकसित होता हैं। साहित्य के विकास के दौ
समय-समग्र पर प्रकट होने वाली रचनात्मक प्रवृत्तियां मुख्यतः साहित्य परंपरा से निर्मित और निर्धारित होती
साहित्यिक रीतियाँ, धारणाएँ, परिप्रेक्ष्य आदि साहित्यिक परंपरा नये अनुभव के द्वंद से उत्पन्न होते हैं। किसी युग
साहित्यिक चेतना एवं चिंतन के बोध से ही उस युग की विशिष्ट रचना की अवधारणा को समझना संभव होता
एहतेशाम हुसैन के अनुसार-बदलते हुए साहित्यिक दृष्टिकोणों में साहित्य चिंतन संबंधी युग सापेक्ष परिवर्तन के स्व
और कारणों की मीमांसा होती है और यही साहित्य की स्वायत्तता के लिये आधार बनती है।[1]

साहित्य को समाज का दर्पण कहें चाहे जीवन की आलोचना, केन्द्र में मानव जीवन ही है। जिस साहि
में मानव संवेदना की सिहरन न हो वह कितना भी कलात्मक क्यों न हो वह त्याज्य है। जगदीश गुप्त - मै समझा
हूं कि सभी भारतीय मूल्य मानवीय मूल्य है वे नैतिक मूल्य हो, चाहे सौन्दर्यपरक मूल्य हो या कोई और पर विशे
अर्थ मैं मानव मूल्यों से है, जो मनुष्य के साथ सहज रूप में जुड़े हुए है। अतः जीवन में मूल्यों की प्रतिष्ठा का अ
मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा है उसके बिना मानव का अस्तित्व निरर्थक है उसके भिन्न रूप में मानव मूल्य की कल्प
मैं नही कर पाता हूँ।[2] संस्कृतार्यों ने रस आनंद या जिस वजह से भी साहित्य पर विचार किया है प्रकारान्तर से उन
लक्ष्य सामाजिक ही रहा है। साहित्य सौद्देश्य होता है और समाज हित की उसमें प्रधानता रहती है स्पष्ट है कि साहि
किसी भी भाषा का हो वह मानव से परे नहीं हो सकता है। समाज की उन्नति का आधार साहित्य है। साहित्य औ

समाज दोनो का अटूट संबंध है, जिस प्रकार सूर्य की किरणों से जगत में प्रकाश फैलता है, उसी प्रकार साहित्य के आलोक से समाज में चेतना का संचार होता है। साहित्य समाज के निर्माण में योगदान देता है। अतः दोनों एक दूसरे के पूरक है। इस प्रकार मनुष्य की उन्नति से समाज की उन्नति निर्भर होती है। साहित्यकार की कथा का आधार समाज के दैनिक जीवन में घटने वाली घटनाएं होती हैं। उन्हें ही कुछ नवीनता देकर वह अपना विषय वनाता है। साहित्यकार शून्य से रचना नही कर सकता और न ही समाज के प्रभाव से वच सकता है। अतः स्पष्ट है कि साहित्य का समाज से सरोकार होता है। चाहे वह यूरोप के गोर्की हो या भारत के प्रेमचन्द का साहित्य इसका प्रमाण है। साहित्य वास्तव में मानव जीवन को वाणी देने के साथ-साथ पथ प्रदर्शन भी करता है तुलसीदास, वाल्मीकि, कालिदास, शेक्सपीयर आदि की साहित्यिक कृतियों से हमारा मानव समाज आज ही नही भविष्य में भी प्रेरणा लेता रहेगा। प्रत्येक देश का एक सांस्कृतिक केन्द्र बिन्दु रहता है, उसी के कोड में भौगोलिक सीमा के भीतर धरती की संवेदना में राष्ट्रीय चेतना उभर कर आती है। जो राष्ट्र के चरित्र की नियामक और सम्पूर्ण गति विधियों की विलक्षणता, उसकी सांस्कृतिक शक्ति में रहती है संस्कृति से आशय मनुष्य की मानसिक, नैतिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं कलात्मक जीवन की समस्त उपलब्धियों की समग्रता से है।[3] किसी भी देश के साहित्य में वैश्विक मूल्यों का स्वरूप विभिन्न परिदृश्यों में अभिव्यक्त होता है जिसके कारण ही देश-काल के प्रभाव से सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना का विकास स्वयंमेव होता चलता है, नाटक, निबंध, काव्य तथा कथा आदि विधाओं में समाज का रहन-सहन और संस्कृति का सजीव चित्र उभर कर जनमानस को आन्दोलित करता है। इस आन्दोलन का स्वरूप व्यक्ति और समाज दोनों को प्रभावित करता है क्योंकि उसमें मानव जाति के उत्थान तथा पतन की कहानी रहती है। इस कहानी का सीधा सरोकार समाज और संस्कृति से होता है। फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आंचल' लक्ष्मी नारायण लाल कृत 'बयां का घोसला' तथा शिवप्रसाद सिंह कृत 'अलग-अलग वैतरणी' आदि उपन्यासों में समाज की रूढ़ियों, अंधविश्वासों, मान्यताओं, वेशभूषा, संस्कारों, पर्वों आदि के जीवन्त चित्रों को उल्लेखित कर मानव जाति के सामान्य मूल्यों का सामने लाने का प्रयास किया है जिनमें सामाजिक गतिशीलता और सांस्कृतिक शाश्वतता का स्वरूप समाविष्ट है। प्रत्येक संस्कृति की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यंजना साहित्य में होती है। भारत के सांस्कृतिक इतिहास की सामग्री साहित्य में ही सुरक्षित है। समाज के निर्माण एवं उसे संगठित करने का कार्य संस्कृति करती है। एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को परम्पराओं की यह मशाल सौंपते हुए उसे और तेजस्व और श्रेष्ठ बनाने की प्रक्रिया देकर आने वाली पीढ़ी को सौंपने का गुरूवर दायित्व बतलाती है। रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है - "कि पीढ़ी दर पीढ़ी हमें अभी बहुत दिनों तक शांति बरतनी है, सद्भाव निभाना है अमृत बोते जाना है, जिससे सब पारस्परिक भिन्नता को भूलकर एक हो जायें।"[4] आज पूरे विश्व की संस्कृति को दूरसंचार इंटरनेट ने एक कर दिया है। आज से हम अपने देश में देखते सुनते हैं कि अन्य देशों में संचार साधन के द्वारा देखा सुना जा सकता है। पहले साहित्य जीवन का परिचालन किया करता था। किन्तु आज साहित्य पढ़ने वाले काफी कम हो गये है। साहित्य का स्थान दूर संचार ने ले लिया है। संचार क्रांति का एक महत्वपूर्ण आयाम दृश्य संचार प्रणाली है। दृश्य संचार प्रणाली ने विश्व की समूची मानवीय सभ्यता तथा संस्कृति को प्रभावित किया है, दूरदर्शन वही परोसता है, जो जनमानस मांग करता है। रूस के विघटन के बाद भारत पश्चिमी सभ्यता की ओर बढ़ रहा है जो हमें बाजारवाद और पूँजीवाद की ओर ले जा रहा है। हम देखते हैं कि आज का बिखरा हुआ समाज चिन्तन शून्य हो गया है। जब

सोचने की शक्ति कुंठित हो जाती है तब हम दूसरे के द्वारा सुझाये गये विचारों को अपनाने लगते हैं और हमारी मौलिक नष्ट हो जाती है। हम दूसरों के विचारों का अन्धा अनुकरण करने लगते हैं और हमारी स्वतंत्र सक्षम चेतना जाती है। आज संचार माध्यम ने यही किया है, जो वह प्रस्तुत करता है, उसे हम किसी विश्लेषण या तर्क के अपना लेते हैं। इससे वैश्वीकरण के दौर में विश्व के राष्ट्रों में साहित्य के प्रवाह में अन्तर आया है रचनात्मक विघटनात्मक शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ है। वैश्विक नीति यदि वसुधैव कुटुम्बकम् तथा सर्वे भवन्तु सुखिनः पर तो निश्चित ही मानवीय चेतना का प्रभाव मांगलिक होगा तथा साहित्य का स्वरूप भी विशाल होगा। साहित्य का प्राचीनतम संस्कृति का धरोहर है तथा ज्ञान का उदय भी। राष्ट्रीय स्वभाव एंव आचार-विचार से संस्कृति को मिली है तथा साहित्य का सामाजिक सरोकार स्थापित होता है। पं. नेहरू का स्पष्ट मत है कि भारत में अनेकता विविधता है किन्तु उसकी आत्मा मौलिक रूप से पुरानी है। अतः यहाँ विविधता में एकता के दर्शन होते हैं।

देश और काल की परिस्थितियो ने आज के मानव को अपने व्यक्तित्व और अस्तित्व के प्रति जागरूक बना दिया है। ऐसी स्थिति में आज के मनुष्य का जन्म तब हुआ जब वह अपने देश और काल के अत्याधिक संवेदनशील, विचारशील, तार्किक, वैज्ञानिक एवं बौद्धिक विवेक से सजग हो उठा। इस सजगता के परिणाम स्वरूप आधुनिक भारत के नवीन सांस्कृतिक एवं राजनीतिक बोध ने आज के मानव को भीतर से झकझोर दिया। संयोगवश इसी दौर में पूर्व और पश्चिम की विचार परम्पराओं जीवन जीने आदि के मूल्यों को लेकर जो संघर्ष हुआ उससे नई चेतना की आग पैदा हुई उसने भारतीय साहित्यकारों को अपने साहित्य में तत्कालीन सांस्कृतिक नवजागरण को अभिव्यक्ति करने का अवसर दिया है हिन्दी साहित्य की मूल्यगत चेतना परिवर्तन की प्रकिया में है परन्तु यथार्थ के सन्निकट ही मानवता का हित देखना चाहती है। चाहे कोई भी साहित्य हो अंततः मनुष्य की हालत को देखने का ही जरिया है। वह मनुष्य का है और मनुष्य के लिए लिखा जा रहा है। जिस तरह व्यक्ति के बिना समाज समाज के बिना राष्ट्र व विश्व की कल्पना नही की जा सकती वैसे ही साहित्य के बिना समाज की। ऐसा कोई भी साहित्य नहीं है जिसमें सामाजिक सरोकार न हो। यह समाज की आन्तरिक दशा का दिव्य दपर्ण है तथा सभ्यता और संस्कृति का संरक्षक, संस्कृति जीवन का संस्कार है। वह केवल अतीत की विरासत नही, भविष्य की संभावना भी है साहित्य का चयन प्रचीनतम संस्कृत की धरोहर है तथा ज्ञान का उदय भी वैश्विक नीति यदि सर्वे भवन्तु सुखिनः पर चले तो अवश्य ही मानवीय चेतना प्रभाव मांगलिक होगा तथा साहित्य का स्वरूप भी विशाल होगा।

संदर्भ :-

1. पाण्डेय मैनेजर, साहित्य और इतिहास, वाणी प्रकाशन दिल्ली संस्करण 2008
2. डॉ. जयदीश गुप्त, नयी कविता और समस्याएं, राजकमल प्रकाशन दिल्ली 2010
3. प्रो. त्रिभवन नाथ शुक्ल, बाण कौशल एवं व्यक्तित्व विकास पृ. 36
4. श्री रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, साहित्य अकादमी प्रकाशन 1956 पृ. 99
5. डॉ. प्रेमचन्द्र गोस्वामी, भारतीय कला के विविध स्वरूप, ज्ञान प्रकाशन नई दिल्ली 2011